सामाजिक समानता और दलितोत्थान में गांधी की भूमिकाः एक अध्ययन

डॉ0 प्रीतम कुमार यादव
राजनीति विज्ञान विभाग,
ति0मां0भा0वि0वि0,भागलपुर।
Email: pritam42183@gmail.com

सारांश

गांधी का पुरा नाम मोहन दास करमचन्द गांधी है, जो महात्मा गांधी के नाम से विख्यात है। इनका जन्म पोरबन्दर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर 1869 को हुआ था। 1888 में गांधी मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास करने के बाद उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजा गया। इंगलैण्ड प्रवास के दौरान गांधी को भगवद्गीता के सौन्दर्य का बोध हुआ। वह 1891 में भारत लौट आए। इसी बीच एक सम्पन्न व्यापारी अब्दुल्ला की ओर से केस की पैरवी करने के लिए उन्हें दक्षिण अफ्रिका जाना पड़ा। 1915 में गांधी स्वदेश लौटने के पश्चात राष्ट्रवादी कॉग्रेस का सदस्य बनकर कॉग्रेस अधिवेशनों एवं विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन हेतु आम लोगों को जागरूक कर एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप प्रदान किये तथा भारत की आजादी तक काफी सक्रिय रहे। आज न केवल भारत में परन्तु पुरे विश्व में गांधी महात्मा गांधी के नाम से विख्यात है। महात्मा गांधी भारतीय राजनीतिक इतिहास में एक ऐसा नाम है जो भारत के 'राष्ट्रपिता' और 'बापू' के नाम से भी सम्मानित है और संबोधित किये जाते हैं। आये दिन राजनीति ह्रास के कारणों से कई आरोप भी गांधी पर लगते रहे हैं परन्तु यह कहना अतिशोयुक्ति न होगा कि आज भी भारतीय राजनीति गांधी के इर्द–गिर्द अथवा उनके सुझाये गये सिद्धांतो या गांधीवादी अवधारणा के अनुरूप ही संचालित व अग्रसर है। गांधी के विकेन्द्रीरण, खादीग्रामोद्योग, ट्रस्टीशिप, नशाबंदी, धार्मिक, साम्प्रदायिक आदि के संबंध में सुझाए गए विचार आज भी व्यवहारिक है। भारतीय राजनीति में चाहे कोई राजनीतिक दल हो गांधी के आदर्शों के बगैर राजनीतिक जीवन एक पग चलना आसान नहीं होगा। गांधीजी ने समाज को एक ऐसा स्वरूप देने का प्रयास किया जिसकी प्रासांगिता आज भी है। गांधी एक ऐसा नाम है जो असत्य को सत्य से, अहंकार को प्रकाश से अन्यायय को न्याय से और हिंसा को अहिंसा से जीतने वाली शक्ति का नाम है। गांधी ने भारतीय समाज में छूआ–छूत एवं अस्पृश्यता का विरोध करते हुए समाज में एक रूपता प्रदान करने के लिए कई व्यवहारिक आयामो को सुझाए जो आज भी प्रासांगिक है।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 30.06.2020
Approved: 30.09.2020

डॉ0 प्रीतम कुमार यादव

सामाजिक समानता और दलितोत्थान में गांधी की भूमिकाः एक अध्ययन

RJPP 2020,
Vol. XVIII, No. II,
pp.150-155
Article No. 017

Online available at *:*
https://anubooks.com/?page_id=6391

प्रस्तवना

प्रस्तु शोध आलेख विश्लेषणात्मक एवं वर्णात्मक प्रकृति का है। शोध कार्य के लिए विभिन्न स्त्रोतो का उपयोग किया गया है। उसके लिए मुख्यतः प्रकाशित ग्रन्थ, पत्र–पत्रकिओं में छापे विवरण, निबंध एवं लेख, आलेख, इन्टरनेट, गुगल तथा विभिन्न शोध ग्रन्थों को अध्ययन का आधार बनाया है।

तथ्य विश्लेशन

महात्मा गांधी ने एक ऐसे समाज की रचना की बात की जिसमें सब लोगो की आवश्यकताएं पूरी हो जाती हों। जहां सारा कार्य न्यायपूर्ण होता है। जहां न तो कोई अभाव है, न किसी तरह की चिंता, जहॉ किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं है। न ऊंच–नीच का भेद है और न मालिक गुलाम के भेद। जहां सर्वत्र प्रकाश फैला रहता है, परन्तु वह किसी को जताता नहीं। वही स्वराज्य है, वही स्वदेशी है।[1] भारतीय समाज प्राथमिक रूप से ग्रामीण समाज है। हलांकि यहां नगरीकरण बढ़ रहा है। बावजूद इसके भारत के बहुसंख्यक लोग आज भी गांव में ही रहते हैं। (67 प्रतिशत 2001 की जनगणना के अनुसारा) उनका जीवन कृषि अथवा उससे संबंधित व्यवसायों से चलता है।[2] इस संदर्भ में लोक नायक जय प्रकाश नारायण ने भी भारत के गांवों के स्थिति के बारे में कहा कि हमारे गांव में आज वर्ग और जाति लगभग मिली–जुली हे। जो उच्च जाति के हैं, उनमें ही अधिक उच्च वर्ग के लोग पाये जाते हैं। यह पाया गया कि उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों को समझा–बुझाकर उन्हें जो सुबिधाएं मिली है, छुड़ाना और विभिन्न जातियों के बीच एकता का वतावरण बनाना कठिन काम है। जो नीचे दबे हैं, वे जब तक अपनी ताकत को प्रतिपादित (assert) नहीं करते हैं, जब तक उसमें आत्मसम्मान की भावना पैदा नहीं होती, तब तक उपर वालों में परिवर्तन करना कठिन है।[3] गांधी के सामाजिक चिंतन को इसी गतिशीलता के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। भारतीय समाज की बहुसंख्यक जनता हिन्दू धर्म को मानती है। डॉ0 अम्बेडकर हिन्दू धर्म की स्थिति पर प्रकाश डालत हुए कहते हैं कि हिन्दू धर्म वेद–स्मृतियों, यज्ञ–कर्म, सामाजिक शिष्टाचार, राजनीतिक व्यवहार तथा शुद्धता के नियमों जैसे अनेक विषयों की खिचड़ी संग्रह मात्र है। हिन्दुओं का धर्म बस आदेशों व निशेधों की संहिता के रूप में ही मिलता है और वास्तविक धर्म जिसमें अध्यात्मिक सिद्धांतों की विवेचना हो, वास्तव में सर्वजनीन और विश्व के सभी समुदायों के लिए हर काम में उपयोगी हों, हिन्दुओं में पाया ही नहीं जाता और यदि कुछ थोड़े से सिद्धांत पाये भी जाते हैं, तो हिन्दुओं के जीवन में उनकी कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं पायी जाती है। हिन्दुओं का धर्म 'आदेशों और निशेधों' का ही धर्म है, यह बात वेद व स्मृतियों में 'धर्म' शब्द के प्रयोग तथा व्यख्याकारों द्वारा उसकी व्यख्या से स्पष्ट है। वेदों में 'धर्म' का आशय अधिकांशतः धार्मिक आध्यादेशों और अनुष्ठानों में पाया जाता है। जैमिनी ने भी अपने 'पूर्व मीमांसा' नामक ग्रंथ में धर्म की परिभाशा 'वैदिक आदेशों के अनुसार 'अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति' के रूप में की है और सरल भाषा में इसे यों कहा जा सकता है कि हिन्दू जिसे 'धर्म' कहते हैं, व्यवहार–नियम अथवा विद्यार्थियों को अनुशासन में रखने जैसे कानून का रूप दिये गये नियम मात्र है। डॉ0 अम्बेडकर ऐसे अध्यादेशों की संहिता को 'धर्म' मानने के लिए तैयार नहीं थे।[4]

परंपरागत समाज वह है जिसकी सामाजिक व्यवस्था में धर्म, नैतिकता, प्रथा, परम्परा, जन्म, भाग्यवादिता एवं रूढ़िवादिता का विशेष महत्व देखने को मिलता है तथा परिणाम स्वरूप जिसमें सामाजिक गतिशीलता एवं सामाजिक परिवर्तन की गति सापेक्ष रूप से काफी धीमी होती है।[5] मार्क्स के वर्गीकरण के अनुसार ''भारत एशियाई समाज की श्रेणी में आता है इनके अनुसार यह एक ऐसा समाज है जिसकी कृषि प्रधानता आर्थिक व्यवस्था उत्पादन की छोटी इकाईयों पर आधरित है तथा साथ ही जिसमें केन्द्रित राज्य और नौकरशाही है, जिसकी शक्ति जल–पूर्ति नियम पर निर्भर करती हैं।[6] इस प्रकार भारतीय समाज आज न तो पुरी तरह पारंपरिक रह गया है न ही पूरी तरह आधुनिक बन पाया है। भारतीय समाज व्यवस्था वर्ण और जाति पर आधारित ढांचा है और इसी से भारतीय समाज निर्मित है। भारतीय समाज जाति एवं वर्ण वरदान और अभिशाप दोनों सिद्ध हुए हैं। सत्ता और सुविधाओं के असमान वितरण के प्रति जागरूक बहुत से जाति समूह राजनीति को संगठन हेतु वाहन के रूप में प्रयुक्त करते हैं।[7]

महात्मा गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे। वे हिन्दू धर्म में आस्था रखते हुए भारतीय समाज को मानवीय आधारों पर गढ़ना चाहते थे। इसलिए उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों की समय–समय पर आलोचना भी की। उनका धर्म संबंधी दृष्टिकोण ईश्वर से अटूट आस्थ के साथ–साथ अहिंसा एवं नैतिकता के उच्च आदर्शों पर आधारित था। यह भी सच है कि सब धर्मों में कुछ अंधश्रद्धा आ गयी है, न्यूनताएं हैं, कोई न कोई रूढ़िकाल प्रवाह में विकसित हुई जो अतीत में उपयोगी रही हो लेकिन आज कालवाह् और मानव विरोधी हो गयी है। इन्हें छोड़ना होगा। हिन्दुओं की अस्पृश्यता या जाति–भेद अमुक जाति श्रेष्ठ और दूसरी जाति कनिष्ठ आज क्यों कोई मानेगा।[8]

सामाजिक सुधार के क्षेत्र में गांधी के योगदान व विचार बहुत ही महत्वपूर्ण है। गांधी हमेशा ही राजनीति लड़ाई के साथ–साथ सामाजिक सुधार की लड़ाई भी लड़ते रहे, यह जगजाहिर है कि गांधी, अफ्रीका, अंगलैण्ड तथा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की राजनीतिक लड़ाई के साथ–साथ जीवन के महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू को भी कभी नजरन्दाज नहीं किया। इसलिए तो गांधीजी के तमाम विचारों में सामाजिक विचार काफी महत्व रखता है। गांधी के सामाजिक विचार काफी व्यापक है, क्यौंकि यह विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रम से जुड़ा हुआ है। गांधी ने अस्पृश्यता या छुआछूत को समाज का कलंग तथा घातक माना है, जो न केवल स्वयं को अपितू सम्पूर्ण समाज को नष्ट कर देता है। गांधी का मानना है कि इसी अस्पष्यता की नीति के कारण हिन्दू समाज पर कई संकट आए हैं। गांधी कुछ हिन्दुओं के इस तर्क को गलत मानते हैं कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग है, जिसे समाप्त करन असम्भव है। कोई भी धर्म अस्पृश्यता का समर्थन नहीं करता है। गांधी अछूतों को हरिजन अर्थात भगवान् के आदमी कहा करते थे। गांधी ने हरिजनों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार देने का निरन्तर प्रयास किया है। गांधी ने अस्पृश्यता का अन्त कराने के लिए हिन्दू मन्दिरों में हरिजनों का प्रवेश करने तथा उन्हें अन्य जातियों की भॉति पूजा–पाठ करने का भी अधिकार दिलाने का प्रयास किया तथा अछूतों के बालाकों को गोद लेने की वकालत की। गांधी के सामाजिक विचारों में अस्पृश्यता का अन्त करने सम्बन्धी विचार काफी महत्वपूर्ण है। गांधी ने स्त्री और पुरूषों को समान दर्जा दिया है। गांधी

का स्त्री के अधिकार के संबंध में यह कथन काफी वैज्ञानिक और प्रासांगिक है कि ''कोई भी राष्ट्र अपनी आधी आबादी (महिलाओं की आबादी) को नजर अन्दाज कर विकास नहीं कर सकता।'' साम्प्रदायिक एकता बनाए रखने के लिए गांधी ने धार्मिक और अध्यात्मिक दृष्टिकोण को अपनाया है। उन्होंने कहा है कि सभी धर्म ईश्वर को प्राप्त करने के विभिन्न मार्ग है। अतः इन धर्मो के नैतिक एवं अध्यात्मिक सिद्धांत एक ही समान है। न कोई धर्म श्रेष्ठ है और न कोई निम्न स्तर का। अतः सभी मनुष्य को चाहिए कि वे सभी धर्मो का समान आदर करें। सभी सम्प्रदायों को अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार है। इसके लिए उन्हें समान रूप से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार प्राप्त है। गांधीजी भी समाज में वर्ग के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए संघर्ष की जगह कल्याण हेतु सहयोग धारण में विश्वास करते हैं। उनका कहना है कि धनी और गरीब दोनो एक–दूसरे के लिए आवश्यक है, जिन्हें एक दूसरे को सहयोग करना चाहिए। गांधीजी के वर्ग–समन्वय सम्बन्धी धारण वैज्ञानिक सिद्धान्त के विरोधी और आदर्शवादी है। गांधीजी ने सामाजिक जीवन में नशाखोरी की बढ़ती प्रवृति को देख कर काफी दुःखी हैं, उनका मानना है कि इस प्रवृति से व्यक्ति के व्यक्तित्व के साथ–साथ अर्थ, प्रतिष्ठा की तो हानि होती ही है, पूरी सामाजिक व्यवस्था दूषित व विकृत होने लगती है।[9]

गांधीजी के अनुसार साध्य की अपेक्षा साधनो पर अधिक बल दिया गय है। वे कहा करते थे साधन ही साध्य को बनाते हैं, हम जो बीज बोते हैं, वैसे ही फल काटतो हों, हमारे साधनों की स्वच्छता हमारे साध्य को प्रभावित करती है। साधन तो बीच की भांति हैं और साध्य फल। गांधीजी साधनों की पवित्रता पर अधिक बल दिया करते थे। साधन साध्यों की अपेक्षा अधिक आवश्यक होते हैं। साधनों के फलस्वरूप हम साध्यों को प्राप्त करते हैं। साधन हमारे वश में होते हैं साध्य हमसे बहुत दूर हमारा नियंत्रण साधनों पर तो होता है, साध्यों पर नहीं। साध्य साधनों के अनुपात में होते हैं, वे हमारे साधनों के प्रारूप होते हैं। जैसे साधन होते हैं, साध्य भी वैसे होते हैं। साध्य, साधनों से बड़े नहीं होते, यदि साधन नैतिक नहीं है तो साध्य भी नैतिक नही हो सकते। मोक्ष की प्राप्ति, स्व– प्राप्त का दूसरा नाम है और स्व–प्राप्ति, स्व–स्वच्छता द्वारा ही संभव हो पाती है। गांधीवादी सामाजिक व्यवस्था, भेदभाव रहित व्यवस्था है। गांधीजी के दृष्टि में समान समाज ही वास्तविक समाज होता है–एक ऐसा समाज, जहां पर समाज के सभी वर्ग एक दूसरे के समान हो और जहां निम्नतर वर्ग को अन्य उच्चतर वर्गों के बराबर आने के लिए विशेष सुविधाएं प्राप्त हों तथा जहां परस्पर भेदभाव का उन्मूलन हो। उनकी दृष्टि में सामाजिक समानता सामाजिक व्यवस्था का सार होती है। गांधीजी का स्वदेशी आन्दोलन के संबंध में मानना था कि यह केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार मात्र नहीं है और न ही देश में बनी वस्तुओं का प्रयोग मात्र है। स्वदेशी का अर्थ उस कर्त्तव्य से है जो हम अपने निकटतम पड़ोसी की ओर निभाते हैं– यह वह तत्व है जो हमें निकटतम द्वारा बनायी गयी वस्तुओं व उनसे उपलब्ध सेवाओं तक सीमित करता है। इसका अर्थ है–हमें उन वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए जो हमारे निकटतम बनती हैं न कि उनका जो हमसे दूर के क्षेत्रों में बनती है। मार्क्सवादी चिंतन के विरूद्ध गांधीजी ने न्यासिकता सिद्धांत का उल्लेख किया है। न्यासिकता के सिद्धांत का भाव यह है कि किसी उद्योग का स्वामी,

उस उद्योग का स्वामी न होकर एक न्यासिक है, समस्त सम्पत्ति ईश्वर की सम्पत्ति है। हमें किसी भी औद्योगिक संस्थान से उतना कुछ लेना चाहिए जितना हमारी आश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक हो। जो किसी उद्योग का न्यासी है उसे भी उस उद्योग से अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए मजदूरी लेनी चाहिएत जितनी कि एक मजदूर उस उद्योग से मजदूरी लेता है, उद्योग का मुनाफा समाज का मुनाफा है। ''उसका मुनाफा समाज का मुनाफा है, उसकी आवश्यकता केवल उसकी आवश्यकता है।''[10]

गांधीजी का कहना था कि सत्ता का केन्द्रीकरण सदैव ही हानिकारक होता है। इसके परिणामस्वरूप कुछ थोड़े से व्यक्ति राज्य की सत्ता पर एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और छल–कपट द्वारा उनके साधनों का प्रयोग अपने स्वार्थ–सिद्ध के लिए करते हैं जिसे रोकने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण ही हो सकता है। राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी गांवों का चित्र उपस्थित करते हुए उन्होंने लिखा है, 'मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए यह अपने पड़ोसियों पर निर्भर नह रहे। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम का पहला काम होगा कि खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए रूई की फसल उत्पन्न करना। ग्राम की अपनी नाट्यशाला, सार्वजनिक भवन और पाठशाला भी होनी चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा अन्तिम कक्षा तक अनिवार्य होगी। यथासम्भव प्रत्येक कार्य सहकारिता के आधार पर किया जायेगा। गांव का शासन पांच व्यक्तियों की पंचायत द्वारा संचालित होगा। पंचायत की व्यवस्थापिका सभा कार्यकारिणी व न्यायपालिका सभी कुछ होगा।'' गांधीजी का आदर्श समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित होगा। प्राचीन काल की भांति समाज चार वर्गो में विभाजित होगा–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र। प्रत्येक वर्ण वंश परम्परा के आधार पर अपना कार्य करेगा। किन्तु विविध वर्णों के व्यक्तियों को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त होंगे और किसी प्रकार की उंच–नीच की भावना नहीं होगी। आदर्श समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने भरण–पोषण हेतु श्रम करना अनिवार्य होगा। कोई भी व्यक्ति अपने निर्वाह के लिए दूसरों की कमाई हड़पने का प्रयत्न नहीं करेगा और बौद्धिक श्रम करने वाले व्यक्ति के लिए भी थोड़ा–बहुत शारीरिक श्रम करना अनिवार्य होगा। सभी व्यक्तियों के द्वारा कुछ न कुछ शारीरिक श्रम किये जाने पर समाज में वास्तविक समानता स्थापित हो सकेगी।[11]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गांधीजी न केवल भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में नेतृत्व प्रदान कर भारत की आजादी में अहम और महत्वपूर्ण गयोदान दिए हैं, बल्कि भारत के राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक समरसता को बनाये रखने के साथ–साथ दलितोत्थान में मी सामाजिक समता को बनाये रखने का भरपूर प्रयास किया है। दलितोत्थान में समाज के किसी भी वर्ग को निराश करना उनका मकसद नहीं रहा। उनका लक्ष्य दलितों को सामुदायगत रूप से सामाजिक एवं राजनीतिक तौर पर सक्षम व मजबूत करना था। गांधी ने अस्पृश्यता का अन्त कराने के लिए हिन्दू मन्दिरों में हरिजनों का प्रवेश करने तथा उन्हें अन्य जातियों की भॉति पूजा–पाठ करने का भी अधिकार दिलाने का प्रयास किया तथा अछूतों के बालाकों को गोद लेने की वकालत की।

गांधी के सामाजिक विचारों में अस्पृश्यता का अन्त करने सम्बन्धी विचार काफी महत्वपूर्ण रहा है। गांधी एक ओर जहां समाज को अपने और अपने पड़ोसियों के बूते आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं वही रूढ़िवादित और छूआ–छूत या अस्पृश्यता, साम्प्रदायवादी प्रथा का विरोध करते हुए देश की आधी आबादी (स्त्रीयों), दलितो आदि को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक रूप से समान अधिकार दिए जाने का भरपूर प्रयास करता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि गांधीजी ने अपने जीवन में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ ही ऐसे कई कई तथ्य सुझाए जो समाजिक समता के साथ समाज में दलितोत्थान की दिशा में काफी सराहीनय योगदान रहा है, जिसकी प्रासांगिकता आज भी उतनी ही है।

संदर्भ ग्रंथ

01. गांधी, म.क., *ग्राम स्वराज्य*, डायमंड पाकेट बुक(प्रा0) लि0 प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ0–**28.**
02. *भारत में समाज परिवर्तन एवं विकासःग्रामीण समाज में विकास एवं परिवर्तन,* बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड, पठ्य–पुस्तक भवन, बुद्ध मार्ग, पटना, प्रथम संस्करण, 2008, पृ0–**58**.
03. नारायण, जयप्रकाशः, *सम्पूर्ण क्रांतिःवर्ग संगठन*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, तीसरा संस्करण, अगस्त 2006, पृ0 **20.**
04. डॉ0 अम्बेडकरः, *जातिभेद का उच्छेद*, अनु. एम.ए. श्री श्रवर्द्धन एवं एम0ए0सुन्दर लाल सागर, बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनाउ, संस्करण 1986, पृ0 **96–97.**
05. उपरोक्त, पृ0 **51.**
06. उपरोक्त।
07. चौबे, कमल नयन, *भारत में राजनीतिःकल और आज*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 2008, पृ0 **16**.
08. बंग, ठाकुर दास, *हिन्दू धर्म का असली रूप,* सर्व सेवासंघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी, द्वितीय संस्करण, जनवरी 2004, पृ0–**13.**
09. डॉ0 अशोक कुमार, यू0जी0सी0, नेट/जे0आर0एफ0/सेट, *राजनीति विज्ञान–iii पत्र* ,उपकार प्रकाशन, आगरा–2, पृ0 **194–197**.
10. एन0डी0अरोड़ा, *राजनीति विज्ञान,* एम0सी0ग्रोहिल ऐजुकेशन, डब्लू0ई0 सीरीज, पृ0–**10.3–10. 4 ।**
11. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, यू0जी0सी0, नेट/स्लेट *राजनीति विज्ञान–iii पत्र*, प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, साहित्य भवन आगरा–282007, पृ0–**140–141**.